INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 8 | SEPTEMBER - 2023

संस्कृत नाटकों एवं महाकाव्यों में युद्ध का नीतिशास्त्र

डॉ. राकेश कुमार
प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

भारतवर्ष की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्राचीनकाल से प्रसिद्ध संस्कृत वाङ्मय भारत का ही नहीं अपितु, निःसन्देह इस लोक का सबसे प्राचीन एवं समृद्ध वाङ्मय है। सांस्कृतिक अस्मिता की परिचायक हमारी संस्कृति एवं लोकहित की भावना से परिपूर्ण साहित्य इससे भलीभांति अनुप्राणित है। भारतवर्ष के सांस्कृतिक उत्कर्ष का जितना सजीव चित्रण देव वाणी संस्कृत में उपलब्ध होता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

संस्कृत के कवि–मनीषियों ने अपने चिन्तन एवं विचारों से सम्पूर्ण प्राणी वर्ग को लाभान्वित एवं साहित्य सृजन हेतु प्रेरित करने के लिए विविध विधाओं यथा–नाटक, महाकाव्य, खंडकाव्य, कथा, आख्यायिका एवं चम्पू आदि का आश्रय लिया है, क्योंकि संस्कृत साहित्य मानव जीवन से जुड़ा होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करता है। उसमें उन सभी स्थितियों–परिस्थितियों का जीवन्त चित्रण होता है, जिनको मनुष्य ने अपने जीवन में चुनौति के रूप में स्वीकार कर, उनका सामना ही नहीं किया, अपितु उन्हें करारा जवाब दिया है।

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के भव्य और श्रेष्ठ विचारों का उत्कृष्ट दर्पण ही नहीं है अपितु निःसन्देह यह सत्य है कि प्रत्येक विषय की गंगोत्री, इसी से प्रस्फुटित होती है। आचार्य दण्डी ने प्राकृत भाषा से भेद दिखलाने के अवसर पर ''संस्कृत'' का भाषा के लिए प्रयोग कर, मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा है–

''संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः''
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाणभारती।।[1]

इस भाषा का साहित्य ही, वह साहित्य है, जिसमें गृहस्थ धर्म का चित्रण सांगोपांग, पूर्ण तथा हृदयावर्जक रूप में उपलब्ध होता है। साहित्य ही तो वह साधन है, जिसके माध्यम से किसी भी देश की संस्कृति का समग्र रूप से प्रचार–प्रसार होता है। अतः सही ही कहा है कि **''साहित्य समाज का ऐनक है।''**

सामान्यतः दृश्य और श्रव्य के भेद से काव्य दो प्रकार का माना गया है, और यह दोनों भेद ही काव्य की आंगिक विधा हैं। दृश्य काव्य के लिए सामान्यतः नाट्क या नाट्य आदि शब्द प्रचलित हैं जबकि श्रव्य के लिए काव्य। जिस प्रकार संस्कृत भाषा का साहित्य विश्व की समस्त भाषाओं के साहित्य से सर्वात्कृष्ट है, उसी प्रकार इसका नाट्य साहित्य भी अपनी विशालता एवं व्यापकता के कारण। प्रत्येक भाषा के नाट्य साहित्य की अपेक्षा सर्वतोभावने श्रेष्ठ है, और निःसन्देह यह अपनी अभिनेयता, विषय–वस्तु, ग्राह्यता, पात्रचयन योजना, रस, ध्वनि, छन्द, अलंकार एवं प्रतिपाद्य विषय, प्रत्येक दृष्टि से अनुपम है। यदि हमें ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञान की त्रिवेणी किसी एक ही साहित्य में देखनी हो, तो वह एकमात्र संस्कृत भाषा का ही नाट्य साहित्य है, जो इस कसौटी पर खरा उतरता है। श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य का महत्व अधिक है, क्योंकि यह अपने प्रभाव से जनमानस को साक्षात् रूप से और शीघ्र प्रभावित करता है। श्रव्य काव्य की तरह इसकी परम्परा भी प्राचीन काल से ही है। निःसन्देह नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति/ परिकल्पना त्रेता युग में ब्रह्मा द्वारा ही की गई थी।

श्रव्य काव्य के तीन उपभेद हैं– पद्यकाव्य, गद्यकाव्य तथा चम्पू, जिसमें गद्य–पद्य दोनों का प्रयोग होता है। पद्यकाव्य के पुनः तीन उपभेद हैं–महाकाव्य, खंडकाव्य और मुक्तक काव्य। इसी प्रकार गद्य काव्य के भी दो प्रमुख उपभेद हैं–कथा और आख्यायिका। महाकाव्य की उत्पत्ति और विकास की जब चर्चा करते हैं तो संस्कृत काव्य की सर्वप्रथम झलक हमें 'ऋग्वेद' में दृष्टिगोचर होती है। ऋग्वेद में अनकों ऐसे मंत्र हैं जिनमें उनके रचयिता प्रार्थना के स्तर को त्यागकर कवि–प्रतिभा का भी परिचय देते हैं। किन्तु जिसे हम वास्तविक काव्य शैली कहते हैं उसका पूर्ण परिपाक वैदिक काल में नहीं माना जा सकता है। ''ब्राह्मण' ग्रन्थों में भी कुछ स्थलों पर तथा इसके साथ–साथ इतिहास–पुराणकाल में **''सुपर्णाध्याय''** नामक आख्यान में भी काव्य की आभा स्पष्ट प्रतीत होती है। पर वस्तुतः संस्कृत का आदि–महाकाव्य वाल्मीकि कृत ''रामायण'' ही है। यही उस काव्यधारा का उद्‌गम है, जो महाकवि कालिदास, भास, अश्वघोष, माघ, भारवी आदि विभिन्न स्रोतों में विभक्त होकर संस्कृत काव्य–कानन को चिरकाल से सींचती चली आई है।'' आदि महाकाव्य ''रामायण'' की सहज, सरल, मनोहर एवं अलंकृत काव्य शैली ने कालिदास और अश्वघोष जैसे महाकवियों को पूर्णतया प्रभावित ही नहीं किया, अपितु काव्य सृजन हेतु प्रेरित कर, परवर्ती कवियों के समक्ष महाकाव्य का आदर्श भी उपस्थित किया।

इसी प्रकार ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास कुछ शिलालेख मिलते हैं, जिनकी भाषा, शैली को देखने पर ज्ञात होता है कि उस समय तक काव्य–साहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। रूद्रदामन का गिरनारवाला शिलालेख अलंकृत काव्य शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसी प्रकार गुप्तकाल के अन्य उपलब्ध शिलालेखों से भी यह प्रमाणित होता है कि काव्य रचना की प्रगति अखण्ड तथा निर्बाध गति से होती आई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत वाङ्मय में काव्य के दोनों ही भेदों के अन्तर्गत नाटक एवं काव्य रचना की शुरूआत बहुत पहले ही ऋषि–मुनियों कवि–मनीषियों द्वारा की जा चुकी थी और यह काव्य रचना रूपी पुनित कार्य संस्कृत महाकवियों द्वारा वाङ्मय की विविध विधाओं में तभी से उत्तरोत्तर, निर्बाध गति से किया जा रहा है।

नीतितत्त्वों का समारम्भ–

मानव संस्कृति के विकास के अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ–साथ जीवन के प्रत्येक आयाम को कल्याणोन्मुख बनाने के लिए कुछ नीतिगत मूल्यों की अपरिहार्यता स्वीकार की गई है। परिवार, समाज और राज्य के सम्मिलित संचालन के लिए जिस प्रकार विधि निषेध का प्रावधान हुआ उसी प्रकार युद्ध आदि के सन्दर्भों में भी आचरण के लिए नीतिगत बिन्दुओं का प्रावधान किया गया है।

युद्ध –

वस्तुतः जीवन एकाकी हो या सामाजिक दोनों रूपों में युद्ध के रूप में ही गतिमान रहता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जिजीविषा के लिए तथा अपने अस्तित्त्व को स्थापित करने के लिए या सामाजिक रूप में अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए सदैव संघर्षरत रहा है। मनुष्य के लिए संघर्ष में ही जिजीविषा के बीज छुपे हुए हैं इसीलिए **''सर्वाईवल ऑफ द फिटनैस''** के सिद्धान्त को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है। आधुनिक चिन्तक तो इसलिए युयुत्सा को विकास का आवश्यक अंग मानते हैं।

युद्ध के अनेक रूप हैं – एक युद्ध में रक्तपात होता है तथा एक युद्ध में बौद्धिक घात–प्रतिघात होता है। संस्कृत में तो जहाँ एक बूंद रक्त नहीं बहाया बल्कि घात–प्रतिघात स्वर ही मुखर हुए हैं,ऐसे मुद्राराक्षस को वीर रस का सर्वोत्कृष्ट नाटक माना गया है। प्रबोध चन्द्रोदय नाटक आदि में भी भावनात्मक या संवेगात्मक घात–प्रतिघात से नाटकीय सौन्दर्य चेतना का विस्तार हुआ है। इस प्रकार हम स्वीकार करते हैं कि युद्ध अनेक रुपों में जीवन का अपरिहार्य तत्त्व है जिसको कल्याणोन्मुख बनाने के लिए सभ्यता के विकास के साथ साथ कुछ नीतिगत अनुशासन के सूत्रों को ही रेखांकित किया गया है। जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य मानवीय लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन न कर सके और पशुवृत्ति से बचा रहे।

इस हेतु स्थूल रूप से संस्कृत नाटकों एवं महाकाव्यों में युद्ध के संदर्भ में नीतिशास्त्रीय प्रावधानों की प्रचुरता मिलती है। संस्कृत के आदि महाकाव्य रामायण में भी जब युद्ध क्षेत्र में युद्ध करते हुए रावण घायल हो

जाते हैं तब उनके घायल होने पर मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम युद्ध के नीतिशास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए कहते हैं कि– **''घायल का वद्य करना धर्म विरूद्ध है।**[2]

रामायण में ही युद्ध के अन्तर्गत जब रावण घायल होकर क्षत–विक्षत अवस्था में श्रीराम के सामने होते हैं, तब श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण से कहते हैं कि रावण प्रकाण्ड विद्वान् है आप इनसे राजनीति का ज्ञान प्राप्त करें। तत्पश्चात् लक्ष्मण रावण के सिर की तरफ खड़े होकर नीति के मार्ग दर्शन के लिए कहते हैं किन्तु रावण गम्भीरावस्था में रहते हुए लक्ष्मण को कुछ नहीं कहते, तत्पश्चात् श्रीराम लक्ष्मण से कहते है कि यदि आपको रावण से राजनीति का ज्ञान प्राप्त करना है तो आप इसके सिर की तरफ खड़े न होकर इसके पैरों की तरफ आकर खड़े होंवें क्योंकि ज्ञान प्राप्त करने वाले को विनम्रता का भाव रखना चाहिए। तत्पश्चात् लक्ष्मण ने महान पण्डित रावण के पैरों में खड़े होकर राजनीति सीखने की याचना की इससे प्रसन्न हो रावण ने उन्हें राजनीति का ज्ञान दिया।

महाकवि माघ विरचित **''शिशुपालवध महाकाव्य''** में शिशुपाल जब श्रीकृष्ण को गालियाँ सुनाकर उन्हें युद्ध करने के लिए उत्तेजित करते हैं, उस समय श्रीकृष्ण युद्ध करने का समय शास्त्रोचित न मानकर कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं क्योंकि – ''सिंह मेघों का गर्जन सुनकर ही हुँकार भरता है, श्रृगालों का रूदन सुनकर नहीं।''

प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे।
अनुहुङ्करूते धनध्वनिं न हि गोमायुरूतानि केसरी।।[3]

क्योंकि युद्ध का नीतिशास्त्र अर्थात् युद्ध की नीतियाँ भी यही कहती हैं कि अच्छा राजा उचित समय आने पर ही अपने शत्रु का प्रतिकार करता है और उचित समय पर किया गया प्रतिकार फलित भी होता है। जैसा कि **'शिशुपालवध'** में अपने दूत द्वारा दर्पपूर्ण संदेश भेजकर जब शिशुपाल युद्ध को अवश्यम्भावी बना देता है तो दोनों सेनाओं में युद्ध होता है और फिर श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का सिर काट डालते हैं और उसका तेज उनमें लीन हो जाता है।

'किरातार्जुनीयम्' के प्रथम सर्ग में युद्ध करने के लिए युधिष्ठिर के पराक्रम को बढ़ाती हुई द्रौपदी कहती है कि हे राजन्! यदि युद्ध की अपेक्षा आपको शान्ति चाहिए तो वह शान्ति मुनि ही प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि आप क्षत्रिय हैं, पराक्रमशाली हैं, स्वाभिमानी हैं अतः आप शान्ति को छोड़कर और शत्रुओं का वध कर पुनः तेज पराक्रम को प्राप्त करें क्योंकि कामना रहित मुनि ही काम, क्रोध आदि शत्रुओं को शान्ति से जीतकर सफलता को प्राप्त करते हैं राजा नहीं। अतः आप शान्ति के मार्ग को छोड़कर युद्ध का मार्ग अपनावें –

विहाय शान्तिं नृप! धामतत्पुनः प्रसीद संधेहिवधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूयनिःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।।[4]

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही कौरवों द्वारा किए गए व्यवहार के अपमान से व्यथित द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि जब शत्रु हमारा अपमान करने में तत्पर हो रहे हैं ऐसे समय में प्रतिकार करने में समर्थ होकर भी आपको अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए चुपचाप 13 वर्ष तक वनवास में भटकते रहना उचित नहीं है क्योंकि विजय प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले राजा शत्रुओं के विषय में कपटपूर्ण की गई अपनी सन्धि विषयक प्रतिज्ञा को बीच में ही तोड़ देते हैं और परिस्थितियों के अनुकूल कार्य करते हैं। अतः आपको भी ऐसा ही करना चाहिए–

न समय परिरक्षणं क्षमं ते
निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितिशा,
विद्धति सोपधि सन्धिदूषणानि।।[5]

'किरातार्जुनयीम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में भीम द्रौपदी के कथन को ग्रहण करने योग्य बतलाते हुए कहता है कि हे राजन्। द्रौपदी का वचन बृहस्पति को भी विस्मित करने वाला है, क्योंकि दुर्योधन वर्तमान में उन्नति को प्राप्त हो रहा है तथा इस उन्नति का परिणाम भी शुभ होने वाला है। अतः हमें उसका प्रतिकार करना चाहिए। अपनी उन्नति चाहने वाले राजा को महान् एवं अत्यन्त दुष्परिणाम वाली शत्रु की उन्नति को सहन कर लेना चाहिए, किन्तु महान एवं सुफल प्राप्ति की ओर उन्मुख विनाश को सहन नहीं करना चाहिए।

द्विषतामुदय सुमेधसा गुरूरस्वन्ततरः सुमर्षणः।
न महानपि भूतिमिच्छता फलसंपत्प्रवणः परिक्षयः।।[6]

युधिष्ठिर भीम के वचनों की प्रशंसा करते हैं कि हे भीम तुम्हारे वचन वीर जनोचित और नीतिशास्त्र सम्मत हैं किन्तु **''युद्ध का नीतिशास्त्र''** यह कहता है कि जिनकी विजय प्राप्ति की कामना होती है वे लोग कभी भी क्रोध के वशीभूत नहीं होते, वे अपने क्रोध को जीत लेते हैं तथा जब फल सिद्धि को अवश्यम्भाविनी मानते हैं, तभी कल्याणकारी उपायों के साथ पुरूषार्थ को प्रकट करते हैं।

शिवमौपयिकं गरीयसी फलनिष्पत्तिमदूषितायतिम्।
विगणथ्य जनयन्ति पौरूषं विजितक्रोधरयाजिगीषव।।[7]

इस समय भीम भी द्रौपदी के मत का समर्थन करते हैं, किन्तु युधिष्ठिर भीम के मत से सहमत न होते हुए और युद्ध के नीतिशास्त्रयी नियमों से भीम तथा द्रौपदी को शान्त करते हुए कहते हैं कि अभी परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल नहीं हैं अतः ऐसी स्थिति में युद्ध छेड़ना हमारे लिए उपयुक्त न होगा। अतः यह स्पष्ट है कि युद्ध जीतने की इच्छा रखने वाला राजा उचित समय आने पर ही अपने शत्रु राजा के साथ युद्ध करने के लिए तत्पर होता है।

रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में मुनि वशिष्ठ की नन्दिनी गाय पर जब सिंह आक्रमण करता है तब राजा दिलीप का हृदय दयाद्र हो जाता है और राजा सिंह को मारने के लिए अपने धनुष पर चढाने के लिए बाण को तरकस से निकालने की चेष्ठा करता है परन्तु राजा का हाथ स्तम्भित हो जाता है, इसमें राजा अपना अपमान अवश्य समझता है किन्तु राजा युद्ध के नीतिशास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए सिंह पर अपने धनुष बाण से प्रहार नहीं करता है क्योंकि यह युद्ध का नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है कि एक राजा को वन्य जीव पर प्रहार नहीं करना चाहिए –

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा दुद्धतुमैच्छत प्रसभोद्धृतारिः।।[8]

इसी प्रकार ''अभिज्ञान शाकुन्तलम्'' नामक नाटक के प्रथमांक **नेपथ्ये** में युद्ध के नीतिशास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए राजा दुष्यन्त द्वारा आश्रम मृग को मारने का निषेध करते हुए कहा गया है–

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

क्योंकि हे राजन्, आपका यह शस्त्र पीड़ित और दुखी लोगों की रक्षा करने के लिए है, निरपराधी जीव पर प्रहार करने के लिए नहीं –

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।।[9]

संस्कृत नाटकों में रंगमंच पर दर्शकों के समक्ष युद्ध, वध, आक्रमण तथा मंच पर रूदन आदि नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार पूर्णतः निषिद्ध माना गया है। जैसा कि आचार्य भरत मुनि ने कहा है–

''युद्धं राज्यभ्रशों नगरोपरोधनं चैव।
प्रत्यक्षाणि तु नाटे प्रवेशकैः संविधेयानि।''
''यत्र तु वधोरिसतानां वधो हयुदग्रो भवेद्धिपुरूषाणाम्।
किश्चद् व्याजं कृत्वा तेषां युद्धं शमयितव्यम्।।[10]

दशरूपककार आचार्य धनञ्जय मतानुसार नाटकों में युद्ध, वध, राज्य–विप्लव, देश–विप्लव और दूसरे राज्य से किया गया नगर का घेरा, भोजन, स्थान, अनुलेपन तथा वस्त्रधारण करना इत्यादि प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाना चाहिए, किन्तु प्रवेशक आदि के माध्यम से सूचित करना चाहिए –

''दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम्।
संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम्।
अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत।''[11]

''अभिज्ञान शाकुन्तलम्'' नामक नाटक में राजा दुष्यन्त और दानवों के मध्य हुए युद्ध में दानव को मारकर जब दुष्यन्त आगे बढ़ते हैं तो रास्ते में महर्षि मरीचि का आश्रम आता है। राजा दुष्यन्त महर्षि मारीच की प्रदक्षिणा करके ही आगे बढ़ना चाहते हैं, क्योंकि युद्ध के नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार विजय प्राप्ति के उपरान्त कल्याणकारक मंगलप्रद व्यक्ति या वस्तु के मिलने पर उसे प्रणाम तथा प्रदक्षिणा आदि करके ही आगे बढ़ना चाहिए। जो राजा इस नीति अथवा मर्यादा का उल्लंघन करता है, वह कदापि सुख का भागीदार नहीं हो सकता।

''तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि।
प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि।''[12]

ऐसा ही भाव रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग में भी व्यक्त किया गया है–

''प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।।[13]

इस प्रकार हम देखते है कि संस्कृत के नाटककारों ने अपने–अपने नाटकों में युद्ध के नीतिशास्त्रीय नियमों का भलीभांति पालन करते हुए ही युद्धादि कार्य को मूर्त रूप प्रदान किया है।

गणपतिसम्भवम् महाकाव्य के गणशासनोत्कर्ष नामक नवम् सर्ग अन्तर्गत युद्ध में स्थिरता की नीति का संकेत करते हुए कहा गया है कि –

जो अपनी विपत्ति से भागना नहीं चाहता वह छोटी सवारी रखे, पेट इतना बड़ा रखे कि सबके प्रिय–अप्रिय वचन धारण कर सके। बारीक आँखों से अपने इकट्ठे किए हुए मतों से जगत की प्रीति को अपने में चुपचाप देखने की इच्छा करे, इस बात को बताने वाला ही शासक हो सकता है –

यो नो धावितुमीहते स्वविपदः स क्षुद्रपत्रो भवेत्।
सर्वस्यापि धरेत् पियाप्रियवश्चेत् स्यान्महाकुक्षिमृत्।।
सूक्ष्माक्षैर्निभृतं दिदृक्षतु जगत्प्रीतिं मतैः स्वार्जितैः।
इत्युद्बोधितवस्तुतर्त्व विबुधः स्यात् शास्तृपङ्क्तिरिथतः।।[14]

इस प्रकार निःसन्देह रुप से कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों एवं महाकाव्यों में नीति शास्त्रीय प्रावधानों की प्रचुरता मिलती है जिसमें युद्ध के समय एक राजा को अपने शत्रु राजा के साथ कैसी नीति अपनानी चाहिए, कैसा व्यवहार रखना चाहिए, किस समय और किस रूप में युद्ध का आह्वान किया जाना चाहिए, जिससे कि विजय के साथ–साथ प्रजा का हित भी हो सके; युद्ध के नीति शास्त्रीय प्रावधानों के अन्तर्गत यह भी बतलाया गया है कि युद्ध क्षेत्र में वीर योद्धा को घायल हुए शत्रु का वध नहीं करना चाहिए। राजा को किसी वन्य जीव पर प्रहार नहीं करना चाहिए, शस्त्र रहित यौद्धा, वृद्ध पुरूष एवं महिला पर भी शस्त्रादि से प्रहार नहीं करना चाहिए। जैसे ''महाभारत में भीष्म पितामह, गुरू द्रौणाचार्य के सामने आने पर अर्जुन ने अपने धनुष को बाण से सज्जित नहीं किया और कहा कि वे दोनों तो पूजा के योग्य हैं–

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।[15]

आज के संदर्भ में अर्थात् बदलते हुए समय के परिप्रेक्ष्य में भी **''युद्ध का नीतिशास्त्र''** अर्थात् युद्ध की रीति–नीतियों को यदि हम भारत के सन्दर्भ में देखें तो 1971 के भारत पाक युद्ध में पाक सेना के एक लाख सैनिकों ने भारतीय सेना का लोहा मानते हुए उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। तत्कालीन भारत की प्रधानमंत्री स्व0 इंदिरा गांधी ने युद्ध के नीतिशास्त्र का पालन करते हुए उन एक लाख बन्धक सैनिकों को क्षमा दान दे दिया था।

युद्ध चाहे दो राजाओं के मध्य हो अथवा किसी आतंकवादी संगठन और देश के मध्य हो वहाँ भी युद्ध की नीतियों का पालन किया जाता है, जैसा कि आतंकवादी संगठन एलटीटीइ और श्रीलंका के मध्य जो युद्ध हुआ था उसमें भी यह वक्तव्य बार–बार आया था कि युद्ध क्षेत्र के आसपास निवास करने वाले आम नागरिक को किसी भी रूप में शारीरिक, मानसिक और आर्थिक परेशानी नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार भारत के अभिन्न अंग जम्मू–कश्मीर में पाकिस्तान समर्थित आतंकवादी संगठनों द्वारा बार–बार किये जाने वाले हमलों का जवाब देने में वहाँ की राज्य सरकार और वहाँ पर कार्यरत अर्द्धसैनिक बलों द्वारा युद्ध क्षेत्र के आसपास निवास करने वाले आम नागरिक का किसी भी रूप में नुकसान नहीं होवे यह सुनिश्चित कर पहले ही उनको किसी अन्य स्थान पर भेज दिया जाता है, जैसा कि ''कारगिल युद्ध'' के समय वहाँ के नागरिकों को अन्य स्थान पर भेज दिया गया था। वर्तमान परिस्थितियों में भी हम देखते हैं जिस तरह से भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में कभी आतंकवादी संगठनों द्वारा तो कभी अपने–अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए एक राष्ट्र द्वारा अपने ही पड़ोसी राष्ट्र पर कभी सीमा विवाद को लेकर, तो कभी किसी प्रान्त/राज्य को हथियाने के मकसद से युद्ध आदि किया जाता है लेकिन परस्पर एक दूसरे के घोर विरोधी होने के उपरान्त भी युद्धादि से होने वाली हानियों को देखते हुए आमजन के कल्याण को प्राथमिकता देते हुए ही युद्धादि कार्य को अंजाम दिया जाता है। युद्ध का

नीतिशास्त्र भी यही कहता है कि युद्ध क्षेत्र के आसपास निवास करने वाले आम नागरिक को किसी भी रूप में सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक हानि नहीं होनी चाहिए और यही युद्ध का नीतिशास्त्र है।

इस प्रकार संस्कृत नाटकों एवं महाकाव्यों में निहित युद्ध के नीतिशास्त्र का भलीभांति आलोड़न–विलोड़न करने के उपरान्त हम निःसन्देह रूप से कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों एवं महाकाव्यों में युद्ध के नीतिशास्त्र पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। किन्तु शोध पत्र विस्तार भय के कारण यहाँ बहुत ही सीमित अर्थात् लघु रूप में उस पर प्रकाश डाला गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काव्यादर्श, दण्डी – 1/33
2. रामायण–युद्धकाण्ड – गीता प्रेस गोरखपुर
3. शिशुपालवध महाकाव्य – 13/25
4. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य – 1/42
5. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य – 1/45
6. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य – 2/8
7. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य – 2/35
8. रघुवंश महाकाव्य – 2/30
9. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, नाटक – 1/10
10. नाट्यशास्त्र, भरत मुनि – 20/21
11. दशरूपक, धन४जय – 3/34–35
12. अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक – सप्तम् अंक
13. रघुवंश महाकाव्य, प्रथम सर्ग
14. गणपतिसम्भवम् महाकाव्य– 9/48
15. महाभारत, भीष्मपर्व – 2/4